भारत की बदलती हुई राजनीतिक परिदृश्य में कांग्रेस की विचारधारा का अध्ययन

Mohan Kumar

Assistant Professor, Bhagini Nivedita College, University of Delhi, New Delhi

सारांश

भारत संसदीय एवं संघीय व्यवस्था पर आधारित एक संवैधानिक लोकतंत्र है जिसके हृदय में नियमित, स्वंतत्र एवं न्यायसंगत निर्वाचन के प्रति गहरी निष्ठा है भारतीय संदर्भ में निर्वाचन का व्यवस्थित अध्ययन कुछ जटिल प्रश्नों से संबद्ध है- भारतीय राजनीति में निर्वाचन का व्यापक अर्थ क्या है? निरंतर परिवर्तित हो रहा भारत का सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश किस प्रकार निर्वाचन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है? क्या भारत में निर्वाचन पुर्णतः मुक्त एवं न्यायसंगत विधि द्वारा संपन्न हो पता है? निर्वाचनों के सफल संपादन में बाधक तत्व क्या हैं? तथा इन बाधक तत्वों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने हेतु क्या सुझाव या विकल्प उपलब्ध हैं? यदि हम भारतीयराजनीति में राजनीतिक दलो पर दृष्टिपात करें तो भारतीय राजनीति और दलीय व्यवस्था में भारतीयराष्ट्रीय काँग्रेसकी राजनीतिक दल के रूप में महत्वकारी भूमिका रही है ।विगत वर्षों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दल चुनावों में पूर्व की अपेक्षा स्थिरता लाने में असफल रही है इसके पीछे विभिन्न राजनितिक विश्लेषकों द्वारा कई तर्क दिए गए है जिसमें महत्वपूर्ण कारण जन आकांक्षाओं को प्रभावित न करने वाली विचारधारा तथा श्री नरेंद्र मोदी की बढ़ती प्रभावकारिता को हम रख सकते हैं।

मूल शब्द:- दलीय व्यवस्था , लोकतंत्र, राजनीतिक दल ,संघवाद, निर्वाचनप्रणाली, कांग्रेसव्यवस्था

प्रस्तावना

भारत दलीय व्यवस्था की ओर इंगित करे तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय दलीय व्यवस्था की आरंभिक अवस्था को मोरिस जोन्स एवं रजनी कोठारी विद्वानों ने एक दल प्रधान बहुदलीय प्रणाली के रूप में बताया हैं किंतु विगत कुछ दशकों से भारतीय दलीय व्यवस्था के बदलते स्वरूप ने मोरिस जोन्स एवं रजनी कोठारी के मत को चुनौती दी हैं इस संदर्भ में एम. पी. सिंह एवं रेखा सक्सेना का कथन है कि स्वतंत्रता के काल से आंरभ करते हुए देखा जाए तो

भारतीय राजनीति में निरंतरता से कहीं अधिक गमन के लक्षण परिलक्षित होते हैं दलीय व्यवस्था के उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भारत में राजनीतिक दलीय की अभी कोई निश्चित अथवा स्थाई प्रणाली स्थापित नहीं हुई हैं भारत की विशालता, विविधता, सांस्कृतिक तथा सामाजिक अनेकता, विकास के लक्ष्यों तथा मार्गों पर मतभेद तथा संघीय व्यवस्था के संदर्भ में दलों की अत्यधिक संख्या कोई अस्वभाविक बात नहीं हैं। विकास के परिवेश में वैचारिक आधार पर मतभेद भी सामान्य माने जा सकते है। उद्योगीकरण, गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा तथा आर्थिक विकास और राजनीतिक चेतना के अभाव में यह भी समझा जा सकता है कि धर्म, क्षेत्र, भाषा, जाति इत्यादि तत्व राजनीति में भूमिका अपनाते हैं। इसलिए भारतीय राजनीतिक दलीय व्यवस्था में संख्या, अनेकता, वैचारिक तथा परम्परागत सामाजिक आधार इत्यादि कोई भी बात असामान्य अथवा चिंता का विषय नहीं हैं। भारतीय राजनीति में आज जो चिंता के विषय जो निम्न है राजनीतिक दलों का व्यवहार, विकास, लोकतंत्र के प्रति उनकी समक्ष और वचन बद्धता पर संदेह, जन कल्याण, तथा देश की एकता अखंडता, केंद्र-राज्यों के बीच संबंधों को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक सहमति व सहयोग तथा वितीय संसाधनो का बंटवारा, राजनीतिक हित साधने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मिडिया के उपयोग का प्रश्न भी राजनीति में एक चुनौती का विषय बना हुआ है साथ ही प्रतिनिधित्व की अस्पष्ट धारणा भी भारतीय राजनीति में प्रश्न चिन्ह लगाती हैं? आधुनिक राष्ट्र-राज्य की व्यवस्था में, राज्य द्वारा बनाई जाने वाली नीतियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के बेहद निजी पहलुओं तक को प्रभावित करती हैं, इसलिए यह जरूरी है कि व्यक्तियों के पास इन नीतियों को प्रभावित करने के लिए कुछ क्षमता अवश्य होनी चाहिए। यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत राज्य का महत्व तो होता ही है, लेकिन एक प्रतिनिधित्व केन्द्रित लोकतंत्र में सार्वजनिक नीतियों को मूलतः पूरे

समुदाय या समूह की क्षमता ही निर्धारित करती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रतिनिधित्व संस्थाओं में सभी का प्रतिनिधित्व होना चाहिए तभी एक सफल लोकतंत्र की धारणा पुर्णतः सफल होगी। प्रतिनिधित्व में सभी वर्गों, समुदायों की भागीदारी होनी चाहिए। अतः महिलाओं के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि नीति-निर्माण प्रक्रिया के स्तर पर उनकी राजनीतिक प्रतिनिधित्व संख्यात्मक रूप से अधिक से अधिक हो ताकि स्वयं को प्रभावित कर सकने वाली योजनाओं व नीतियों को अपने अनुरूप निर्मित करवाने के लिए महिलाएं सत्ता के गलियारों में अपनी पैठ बना सकें

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधारा

भारत में दलीय व्यवस्था स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एवं उससे व्युत्पनं जनाक्रोश, जो राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ–साथ, नई सामाजिक व्यवस्था के प्रति आशावान थी, उसी का परिणाम है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक भारत में कई राजनीतिक पार्टियाँ जैसेकि कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, कम्युनिष्ट पार्टी, किसान मजदुर प्रजा पार्टी और भारतीय जनसंघ आदि अस्तित्व में थी। रजनी कोठारी का मानना है कि इन सभी राजनीतिक पार्टियों में सबसे संगठित एवं सभी जातियों एवं वर्गों को समायोजित करने वाला दल एकमात्र भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस था।[1] उपर्युक्त कथनों से स्पष्टतः यह जानकारी हासिल होती है कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व राजनीति दलों के विकास की प्रक्रिया प्रांरभ हो चुकीथी। जो लोगो अर्थात जनता को राजनीतिक भागीदारी के प्रति सजग एवं जागृत तथा उनके अधिकारों के प्रति उन्हें लामबंद भी कर रहे थे। उदाहरणतौर पर यदि कांग्रेस पार्टी को देखें तो, जिसकी स्थापना सन 1885 ई में हुई यह दल अपने स्थापना वर्ष के तत्पश्चात से ही भारतीय लोगो को औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत

[1] Kothari, Rajni (1970), "*Politics in India*" orient Blackswan publication, New Delhi.

प्रतिनिधित्व दिलाने की मांगों को लेकर दृढनिश्चयी था। लेकिन यदि हम गहराई से अध्ययन करें तो कांग्रेस पार्टी का एक अन्य पहलू यह भी था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस राजनीतिक विशिष्ट वर्ग, मध्यम वर्ग, एवं उच्च वर्गों का संस्थागत रूप थी, इसलिए संभवतः यह माना जा सकता है कि जो राजनीतिक दल स्वयं सभी वर्गों व जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करता हो, उससे हम यह आशा किस आधार पर कर सकते है कि वह औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत सभी के प्रतिनिधित्व को लेकर सजग रहा हो। लेकिन इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि कांग्रेस पार्टी विभिन्न जातियों व वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही थी। पिछले अध्याय "भारत में प्रतिनिधित्व की अवधारणा एवं संवैधानिक विकास" के अंतर्गत अकादमिक विमर्शों से हमें यह ज्ञात होता है कि भारत में दलगत राजनीति के शुभारम्भ होने के उपरांत,प्रतिनिधि निकायों में जातिगत प्रतिनिधित्व निरंतर परिवर्तनशील रहा हैऔर जिससे भारतीय दलीय व्यवस्था की प्रकृति व स्वरूप भी निरंतर परिवर्तित होती चली गई है, ऐसे में यह आवश्यक है कि भारत में प्रतिनिधिक संस्थानों व निकायों के अंतर्गत जातिगत प्रतिनिधित्व को दलीय व्यवस्था के अनुरूप ही अध्ययन किया जाए। क्योंकि भारत में राजनितिक लाम्बंदियाँ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों व जातीय समूहों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न समय अंतराल में हुई है जिसका वर्णन क्रिस्तोफे जैफर्लोट ने अपनी पुस्तक में किया हैं, जिसका प्रभाव भारतीय राजनीति पर भी पड़ा और बड़े स्तर पर राजनीतिक पार्टियों का विकास और साथ ही साथ मतदान व्यवहार व प्रतिशतता में भी परिवर्तन हुआ जिसके परिणामस्वरूप दलीय व्यवस्था का स्वरूप भी परिवर्तित होता चला गया।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना 72 प्रतिनिधियों की उपस्थिति के साथ 28 दिसम्बर 1885 को बॉम्बे के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में हुई थी। इसके संस्थापक महासचिव (जनरल सेक्रेटरी) ए ओ ह्यूम थे

जिन्होंने कलकते के व्योमेश चन्द्र बनर्जी को अध्यक्ष नियुक्त किया था। अपने शुरुआती दिनों में काँग्रेस का दृष्टिकोण एक कुलीन वर्ग की संस्था का था। इसके शुरुआती सदस्य मुख्य रूप से बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी से लिये गये थे। काँग्रेस में स्वराज का लक्ष्य सबसे पहले बाल गंगाधर तिलक ने अपनाया था।

1907 में काँग्रेस में दो दल बन चुके थे - गरम दल एवं नरम दल। गरम दल का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय एवं बिपिन चंद्र पाल (जिन्हें लाल-बाल-पाल भी कहा जाता है) कर रहे थे। नरम दल का नेतृत्व गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता एवं दादा भाई नौरोजी कर रहे थे। गरम दल पूर्ण स्वराज की माँग कर रहा था परन्तु नरम दल ब्रिटिश राज में स्वशासन चाहता था। प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने के बाद सन् 1916 की लखनऊ बैठक में दोनों दल फिर एक हो गये और होम रूल आंदोलन की शुरुआत हुई जिसके तहत ब्रिटिश राज में भारत के लिये अधिराजकिय पद (अर्थात डोमिनियन स्टेट्स) की माँग की गयी।

परन्तु 1915 में गाँधी जी के भारत आगमन के साथ काँग्रेस में बहुत बड़ा बदलाव आया। चम्पारन एवं खेड़ा में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को जन समर्थन से अपनी पहली सफलता मिली। 1919 में जालियाँवाला बाग हत्याकांड के पश्चात गान्धी काँग्रेस के महासचिव बने। उनके मार्गदर्शन में काँग्रेस कुलीन वर्गीय संस्था से बदलकर एक जनसमुदाय संस्था बन गयी। तत्पश्चात् राष्ट्रीय नेताओं की एक नयी पीढ़ी आयी जिसमें सरदार वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, महादेव देसाई एवं सुभाष चंद्र बोस आदि शामिल थे। गान्धी के नेतृत्व में प्रदेश काँग्रेस कमेटियों का निर्माण हुआ, काँग्रेस में सभी पदों के लिये चुनाव की शुरुआत हुई एवं कार्यवाहियों के लिये भारतीय भाषाओं का प्रयोग शुरू हुआ। काँग्रेस ने कई प्रान्तों में सामाजिक समस्याओं को हटाने के प्रयत्न किये जिनमें छुआछूत, पर्दाप्रथा एवं मद्यपान आदि शामिल थे।

राष्ट्रव्यापी आंदोलन शुरू करने के लिए कांग्रेस को धन की कमी का सामना करना पड़ता था। गांधीजी ने एक करोड़ रुपये से अधिक का धन जमा किया और इसे बाल गंगाधर तिलक स्मरणार्थ तिलक स्वराज कोष का नाम दिया। 4 आना का नाममात्र सदस्यता शुल्क भी शुरू किया गया था।

स्वतन्त्र भारत में कांग्रेस और उसकी विचारधारा

नेहरु/ शास्त्री युग

स्वतंत्र भारत में जब चुनाव और सत्ता की राजनीति आरम्भ हुई तो पहले तीन आम चुनावों 1952, 1957, 1962, में कांग्रेस पार्टी बहुमत (Majority) में आयी इसलिए कई लेखकों में से एक लेखक रजनी कोठारी ने आरंभिक वर्षो की दलीय व्यवस्था को एक दल की प्रभुत्व वाली (One dominant party) दलीय व्यवस्था का नाम दिया। "कांग्रेस सिस्टम" (Congress System), जिसे **रजनी कोठारी** द्वारा अवधारणा के रूप में समझाया गया था, जिसमें उन्होंने "सहमति की पार्टी" (Party of Consensus) (यानि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) और दबाब की पार्टियों (Parties of Pressure) (व्यवस्था के हाशिये पर गैर कांग्रेसी पार्टी) को शामिल किया। स्वतंत्रता आन्दोलन में कांग्रेस की भूमिका और अपने नेताओं के व्यक्तिगत करिश्माई नेतृत्व तथा अपने संस्थागत स्वरूप के साथ-साथ विभाजित विपक्ष ने कांग्रेस को तत्कालीन चुनावों में अजेय बना दिया। अर्थात गैर-कांग्रेस दलों को निकट भविष्य में सरकार बनाने का मौका नहीं मिला। कई विद्वानों का मानना है कि "कांग्रेस व्यवस्था" के अंतर्गत कांग्रेस ने सरकार के साथ-साथ विपक्ष की भूमिका को भी अपने दायरे में जोड़ लिया था। औपचारिक रूप से कांग्रेस को विपक्षी दलों के मुकाबले कांग्रेस के असंतुष्टो से अधिक प्रभावी विरोध आया। गैर - कांग्रेसी पार्टियों की कांग्रेस के समान विचारधारा वाले गुटों के साथ निकट समझ और बातचीत थी। यह इन तंत्रों के माध्यम से था कि "असंतुष्ट" (Dissident) कांग्रेसी "मंत्रिवादी"

(Ministerialists) को स्थानातरित करने और सत्ता में आने में सक्षम थे।[2] कोठारी का मानना है कि कांग्रेस के सफल होने का पहला कारण था कि, यह आंतरिक लोकतंत्र के रूप में कार्य कर रही थी। और दूसरा यह था कि नेहरू के करिश्माई चरित्र (Charismatic character) ने भी कांग्रेस का वर्चस्व बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके अलावा एक अन्य कारण यह भी था कि गैर-कांग्रेसी या विरोधी दल बिखरे हुए थे। यह एक दूसरे से उतने या कुछ मामले में इतने अधिक विरोधी थे जितने यह कांग्रेस के भी नहीं थे,इसलिए इनमें से कोई भी दल अपने आप में या कुछ अन्य दलों के साथ मिलकर भी कांग्रेस का विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ था। इसका अर्थ था कि देश में वास्तविक अर्थों में केवल कांग्रेस ही राजनीतिक दल था और अन्य दल कांग्रेस पर दबाव डालने वाले दबाब समूह जैसे ही थे।[3]

फारुकी व **श्रीधरन** कांग्रेस को "एकछत्र दल" के रूप में परिभाषित करते हैं। और उनका तर्क है कि कांग्रेस में परस्पर विरोधी सामाजिक-आर्थिक कारक जैसे बड़े उद्योग व निर्धन, ऊँची जातियां व अनुसूचित जातियां आदि सभी अवस्थित हैं। इनका मानना है कि भारत में कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व अन्य देशो जैसे तंजानिया, केन्या, व मैक्सिको आदि में पार्टी के प्रभुत्व से भिन्न था। इन देशों में जहाँ दल की प्रधानता उसके प्रभुत्व से जुडी थी, वही कांग्रेस में दलों की प्रधानता एकछत्र दल के रूप में,लोकतान्त्रिक स्थितियों के अंतर्गत स्थापित हुई इस संदर्भ में लिजफार्ट ने कांग्रेस को "विविध हितों वाला एक विशाल गठबंधन" बताया व उसे भारत में लोकतंत्र के विस्तार से जोड़कर देखा।[4]

गंधर व **डायमंड** (2001) "कांग्रेस पार्टी" को अपने वर्गीकरण के आधार पर एक अलग वर्ग के रूप में परिभाषित करते हैं। अपने दृढ़ सूत्रीय वर्गीकरण में संभ्रांतीय, लोक आधारित

[2] ibid. p.280.

[3] Kothari, Rajni. (1964). *'The Congress System in India*", Asian Survey, 12(4): 1161-1173.

[4] Farooqui, Adnan and E. Sridharan.(2016). '*Can Umbrella Parties Survive: The Decline of the Indian National Congress'*. Commonwealth & Comparative Politics, 54(3), 331&361.

(वैचारिक - समाजवादी, वैचारिक - राष्ट्रवादी, धार्मिक), संस्कृति आधारित (सांस्कृतिक दल, कांग्रेस के दल, चुनावी दल) (सबको शामिल करने वाले कार्यक्रम व्यक्तिवादी), आन्दोलन निहित दल (उदारवादी वामपंथी, औधोगिक पर्यंत, अतिवादी, दक्षिणपंथी), ये सारे वर्ग बेहद आदर्श हैं, व ये कांग्रेस दलों को एक बहुआयामी, बहुसांस्कृतिक दल के रूप में स्थापित करते हैं, जो विभिन्न सांस्कृतिक व धार्मिक समूहों का गठबंधन है,जो सत्ता व संसाधनों के सांस्कृतिक समूहों में बंटवारे के माध्यम से मतभेद सुलझाते हैं। ऐसे में एकछत्रीय दल कांग्रेस को सबको सम्मिलित करने वाले दल के रूप में देखा जा सकता है।[5]

इंदिरा गाँधी काल

1967 के बाद कांग्रेस में विकसित घटकवाद के संदर्भ में दल के घटक ने लोकप्रियता को सामने रखते हुए समाजवाद की बांते अधिक ऊचे स्वर में करनी आरम्भ कर दी। अतः 1969 के भुवनेश्वर अधिवेशन तथा बाद में फरीदावाद अधिवेशन में संसदीय लोकतंत्र के अंतर्गत समाजवादी राज्य बनाने का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए अनेक उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की बात की गई। इसी को आधार बनाकर नवम्वर 1969 में कांग्रेस का विभाजन किया गया। नई कांग्रेस ने स्वयं को समाजवादी राज्य की स्थापना समर्थक बताया। इसे प्रमाणित करने के लिए श्रीमती इंदिरा गाँधी की सरकार ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण तथा नरेशों के भत्ते इत्यादि समाप्त करने के कदम भी उठाये। श्रीमती इंदिरा गाँधी के काल में घोषणाओं तथा व्यवहार में अंतर बहुत अधिक बढ़ गया। लोकप्रियता प्राप्त करने और दल के घटक वाद में अपनी स्थिति मजबूत करने के इरादे से उन्होंने समाजवाद के नारे बहुत ऊँची आवाज मे लगाये। परंतु व्यवहार में पूंजीपतियों को बहुत अधिक सुविधाएं दी गई, समाजवादी नारे केवल सत्ता संघर्ष में प्रयोग किए गए। आपातकालीन स्थिति में बड़े व्यापारी वर्ग तथा पूंजीपतियों को विशेष रूप से

[5] Gunther, R., & Diamond, L. (2001).*'Types and Functions of Parties'*. In L. Diamond & R. Gunther (Eds.), Political Parties and Democracy. Baltimore, MD: Johns Hopkins University Press. pp. 3-39.

सुविधाएं प्राप्त हुई जबकि श्रमिक वर्ग के हितों तथा अधिकारों पर नियंत्रण लगे।

गठबंधन काल में कांग्रेस की विचारधारा

भारतीय राजनीति में 1980 दशक के अंतिम और नब्वे दशक के आसपास कई महत्वपूर्ण परिवर्तन को चिन्हित किया जा सकता हैं, जिसके प्रभाव ने न केवल भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया को बल्कि दलीय व्यवस्था के स्वरूप को ही बदल डाला। क्षेत्रीय पार्टियों की प्रभुत्वकारी भूमिका, मध्य वर्गों का उदय, धार्मिक, भाषायी व जातिगत अस्मिताएं की राजनीति की बहुतायता और कमजोर व पिछड़े वर्गों में सामाजिक जागरूकता तथा राजनीतिक लामबंदियां ने राष्ट्रीय दलों का पतन किया और राष्ट्रीय दलों का क्षेत्रीय दलों पर निर्भरता आदि घटनाओं ने भारत में बहुदलीय व्यवस्था को स्थापित किया। जिसकी व्यावहारिक पुष्टि 1989 के लोक सभा चुनावों में मिलती है। केंद्र स्तर पर जनता ने कांग्रेस के विरुद्ध मतदान किया, लेकिन यह कोई पहला अवसर नहीं था, क्योंकि 1977 में भी जनता ने कांग्रेस पार्टी के विरोध में जनता पार्टी की सरकार बनवायी थी, लेकिन 1989 के चुनाव में जीतकर आने वाले दलों में इस बार 24 दल थे जो लोकसभा के लिए एक नया रिकार्ड था, वहीं भारतीय राजनीति व चुनावी प्रकृति का एक नया आयाम भी।

1990 के शुरूआती दशकों में राजनीतिक परिदृश्य के अंतर्गत आने वाला व्यापक बदलावों ने न केवल राजनीतिक दलों की संख्या में इजाफा किया बल्कि संघीय एवं राज्य सरकारों में गठबंधन के तहत इन दलों कों प्रतिनिधित्व के अवसर भी दिलाये। जिसकी वजह से सत्ता समीकरणों में एक अभूतपूर्व परिवर्तन देखा जा सकता है। यह बदलाव दलगत राजनीति तक ही सीमित नहीं रहा, इसने संघीय व्यवस्था को भी एक प्रकार से मजबूती प्रदान की।1991 के नव आर्थिक नीति ने राज्य एवं संघवाद की राजनीतिक अर्थव्यवस्था की भूमिका को बहुत प्रभावित किया। इस प्रभाव के कारण योजना एवं आर्थिक प्रबंधन की प्रक्रिया के दौरान

भारत की सरकारों ने बाजार की ताकतों एवं नागरिक समाज संस्थाओं के समायोजन में स्वयं को विवश महसूस किया है। इतना ही नहीं, संघीय गठबंधनात्मक शासन ने ऐसी परिस्थिति को जन्म दिया, जहाँ संघ सरकार केंद्र–राज्य संबंधों पर महत्वपूर्ण मामलों में परामर्श लेने तथा केंद्र द्वारा प्रायोजित विकास की नीतियों एवं कार्यक्रमों के गठन और क्रियान्वयन में सलाह लेने से राज्य सरकार परहेज नहीं कर सकती।[6] राजनीतिक भागीदारी व लामबंदी की परिवर्तनशील प्रवृति का विश्लेषण करते हुए योगेन्द्र यादव लिखते हैं कि, नब्वें के दशक ने, सामाजिक बहिष्करण एवं पिछड़ेपन से पीड़ित सभी समूहों में भागीदारी का उभार देखा है, जिसे वे "द्वितीय लोकतांत्रिक लहर" के रूप में परिभाषित करते हैं। उनका तर्क है कि इस दशक में भारत जिस सामाजिक एवं राजनीतिक मंथन से गुजरा है, उसने अनेक निष्क्रिय समूहों को चुनावी प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में एक नई पहचान दी है। दलीय प्रतिस्पर्धा ने एक नए स्वरूप की शुरुआत की, जिसे उन्होंने "उत्तर–कांग्रेस राजनीति" कहा है। इस नई व्यवस्था में कांग्रेस वह धुरी नहीं रह गई जिसके विरुद्ध प्रत्येक राजनीतिक दल अवस्थित था कांग्रेस को या उसके विरुद्ध वोट डालने की विवशता अब समाप्त हो गई थी। यहाँ तक कि उन राज्यों में, जहाँ कांग्रेस और इसके विरोधियों में सीधा मुकाबला था, कांग्रेस सरकार बनाने वाला एक मात्र दल नहीं रह गया। अब राजनीतिक स्थान पर तीन शक्तियों का कब्ज़ा था कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी और अन्य। यह "तीसरा स्थान" राजनीतिक विकल्पों का स्रोत बना।[7]

उपर्युक्त मत से भिन्न **प्रदीप छिब्बर** का मत है कि कांग्रेस का पतन और विपाटन–आधारित (Cleavage based) दलीय व्यवस्था, राजनीति में नए मुद्दे के उभार या लोगों की लामबंदियों के कारण नहीं हुआ बल्कि

[6] ढींगरा, अलीशा और जय गुप्ता (2017), *'भारत में बहुदलीय व्यवस्था,'* तपन विसवाल (सम्पा.), भारतीय शासन, संवैधानिक, लोकतंत्र और राजनीतिक प्रक्रिया.

[7] Yadav, Yogendra .(1999), '*Electoral Politics in the Time of Change: India's Third Electoral System, 1989-99'*, Economic and Political Weekly, 35 (Nos. 34-35), 2393-2399.

उन समूहों के द्वारा भिन्न–भिन्न दलों को समर्थन देने से संभव हुआ है, जो कभी कांग्रेस का समर्थन किया करते थे।[8] इनके मत में भिन्नताएँ अवश्य हैं लेकिन जैसा कि **सुदीप्त कविराज** स्वीकारते हैं कि "गरीबी हटाओं" के नारे के बाद लोगों में जागरूकता की गूंज सुनाई देने लगी, लोग लामबंद हुये वहीदूसरी ओर क्योंकि क्षेत्रीय पार्टियां क्षेत्रीय मुद्दों को प्रचार -प्रसार कर रही थी, इसका परिणाम यह हुआ कि जो वर्ग राजनीतिक रूप से लामबंद हो रहें थे उनका झुकाव क्षेत्रीय दलों की ओर बढ़ा और राष्ट्रीय स्तर पर सरकार बनाने के लिए विवशता भी बढ़ी जिसके वजह से बहुदलीय गठबंधन की सरकार बननी शुरू हुई। क्योंकि लोगों ने कांग्रेस पार्टी का विकल्प ढूंढ लिया था।

फारुकी और **श्रीधरण** का तर्क है कि, 1989 से 2014 के दौरान दलीय व्यवस्था के विखंडन से तीन बड़े रुझान प्रतिबिंबित होते हैं: पहला, कांग्रेस का पतन दूसरा, भारतीय जनता पार्टी का उत्थान और तीसरा क्षेत्रीय दलों का उदय एवं उनकी स्थिर उपस्थिति। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न द्वि–ध्रुवियताओं वाली राज्य दलीय–व्यवस्थाओं की द्वि–ध्रुवीयता, जो खंडित लोक सभा के रूप में परिणत हुई; जिसमें 1989 से 2009 तक लगातार सात चुनावों में कोई भी एक पार्टी बहुमत हासिल नहीं कर पाई, और वह तब तक वैसी की वैसी बनी रही जब तक 2014 में भाजपा बहुमत जुटा लेने में समर्थ नहीं हुई।[9]इस क्रम में प्रो. रेखा सक्सेना का भी मानना हैं कि नब्बे के शुरूआती दशकों में ही क्षेत्रीय बहु-पार्टी गठबंधन की ओर गहराती प्रवृतियों के आसार दिखने शुरू हो गए थे।

इस दौरान भारतीय जनता पार्टी को पूर्ण बहुमत हासिल हुआ और केंद्र स्तर पर एक पूर्ण बहुमत वाली सरकार सत्ता में आयी। कुछ विश्लेषकों द्वारा इसे भाजपा के नेतृत्व वाली एक-दल प्रभुत्व व्यवस्था माना गया लेकिन इसकी व्यावहारिक पुष्टि होना शायद

[8] Chiibber, P.K (1999), '*Democracy Without Associations*,' New Delhi: Vistar.

[9] Farooqui, Adnan and E. Sridhran (2016), ' *Can Umbrella Parties Survive? The Decline of the Indian National Congress,'* Commonwealth & Comparative Politics, 54(3), 331-361.

कठिन कार्य है। लेकिन यह अन्य चरणों से थोड़ी भिन्न अवश्य दिखाई पड़ती हैं, वैसे कांग्रेस द्वारा स्थापित एक-दलीय प्रभुत्व व्यवस्थाओं में पहली, दूसरी और तीसरी प्रभुत्व व्यवस्था के स्वरूप व प्रकृति के मध्य भी एक बहुत बड़ा अंतर देखा गया। क्योंकि पहली एक दलीय व्यवस्था के उपरांत दूसरी और तीसरी प्रभुत्व व्यवस्था के दौरान कांग्रेस केंद्र स्तर पर एक बड़ी राजनीतिक दल के रूप में जनता द्वारा जरूर चुनकर आई थी लेकिन इसके साथ ही कई राज्यों में अपना राजनीतिक प्रभाव खो चुकी थी, और उन राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियाँ कांग्रेस से लोहा लेने में कामयाब होती हुई दिख रही थी।इसके विपरीत क्योंकि भारतीय जनता पार्टी 2014 लोक सभा चुनाव में पूर्ण बहुमत प्राप्त की थी और साथ ही राज्यों के अंतर्गत अपना राजनीतिक प्रभाव भीबनाया था। आगामी राज्य विधानसभाओं चुनावों में भी जनमत जुटाकर भारतीय जनतापार्टी ने यह साबित कर दिया कि वर्तमान में राजनीतिक परिदृश्य उसके अनुकूल हैं।

लिजफार्ट (1996) ने बाद में कांग्रेस को विविध हितों वाला एक वृहद् गठबंधन बताया जिसके कारण कांग्रेस पार्टी व भारतीय राजनैतिक व्यवस्था, जिसमें उनका प्रभुत्व अवस्थित था, ने सत्ता विभाजन का अनुकूलन किया और लोकतंत्र को सशक्त भी किया।[10] इसके विपरीत **छिब्बर** व **पेत्रोसिक** का मानना हैं कि कांग्रेस राज्य स्तर पर एकछत्र दल नहीं था। इसके पक्ष में वह तर्क देते हैं कि कांग्रेस विभिन्न राज्यों में विभिन्न व असंख्य सामाजिक समूहों से अपना समर्थन प्राप्त करती थी। उन्होंने उसकी तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका की लोकतान्त्रिक पार्टी से की है जो राज्य केन्द्रित दलों का एक गठबंधन था जिसने स्वयं को एक राष्ट्रीय दल के रूप में संगठित किया ताकि राष्ट्रीय सत्ता प्राप्त की जा सके।[11] इसी तरह, हीथ व यादव ने इस बात पर विचार किया है कि कांग्रेस का जाति व वर्ग

[10] Lijphart, A. (1996). *'The Puzzle of Indian Democracy: A Consociational Interpretation'*. American Political Science Review, 90(2), pp.258-68.

[11] Chhibber, P.K., and J. Petrocik (1990).*'Social Cleavages, Elections and the Indian Party System'*. In R. Sisson & R. Roy (Eds.)., Diversity and Dominance in Indian Politics (vol.1). New Delhi:Sage.

आधारित सामाजिक आधार इस बात पर निर्भर करता था कि उनके प्रमुख प्रतिस्पर्धी दक्षिणपंथी हिन्दू राष्ट्रवादी दल भारतीय जनता पार्टी अथवा वामपंथी दल हैं।

उपर्युक्त अवधारणा इस ओर इशारा करती है कि कांग्रेस, जिसे स्वतंत्र भारत के प्रथम तीन लोकसभा चुनावों में विधायी कार्यों को अंजाम देने का अवसर मिला और कांग्रेस ने एकछत्र दल के रूप में सत्ता का संचालन भी किया वही सामजिक विज्ञान के शोध विद्यार्थियों एवं सामाजिक न्याय से जुड़े कार्यकर्ताओं को कहीं न कहीं लोकसभा सदस्यों की सामजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि प्रभावित करती रही है। विधायिका, लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की वह कड़ी है, जिसपर पुरे समाज को आकर्षित करने की जिम्मेदारियां होती हैं। ऐसे में विधायिका के अंतर्गत समुचित प्रतिनिधित्व अनिवार्य है। विधायिका में समुचित प्रतिनिधित्व हो यह इस ओर इशारा करती है कि लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में किस प्रकार के Electoral Law स्थापित किए गए है। यह भी स्पष्ट है कि प्रत्येक देशों ने अपने यहाँ एक विशिष्ट प्रकार की प्रणाली को आत्मसात किया है। इसके अलावा विधायिका को प्रत्येक देशों की दलीय व्यवस्था भी स्वभाविकतः प्रभावित करती है। और अंत में, मैं राजनीतिक पार्टी को रखता हूँ क्योंकि भारत जैसे देशों में राजनीतिक पार्टिया उम्मीदवार को टिकट देने के लिए कई विधियों का प्रयोग करती हैं जो समाज में विवादास्पद मुद्दा है। राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव के बाद विधायिका का निर्माण करती है जिस पर कानून बनाने, सामाजिक उत्थान व न्यायपरक निर्णय लेने की जिम्मेदारियां भी होती हैं, इसलिए यह मुद्दा शोध का विषय बन जाता हैं कि विधायिका उचित प्रतिनिधित्व को आत्मसात कर पायी हैं या नहीं?

वर्तमान भारतीय राजनीतिक परिदृश्य और कांग्रेस की विचारधारा

आजादी के बाद अर्थात 1947 के बाद 2019 का वर्ष इस देश के लिए कितना महत्वपूर्ण हो जाएगा शायद यह सोचा नहीं गया होगा। आप सोच

रहें होगें ऐसी कौन सी बात हैं 2019 में? चुनाव ही तो है, लेकिन उस चुनाव के जरिए भारत का लोकतंत्र पहली बार स्वंय को आजमाने की दिशा में जा रहा हैं। आप कहेंगे, इसका क्या मतलब हैं? हर पाँच वर्ष में चुनाव होता हैं और हर बार लोकतंत्र अपने-आप को आजमाता हैं। जी नहीं, हम् इस बात को पहली बार महसूस भी कर रहें हैं कि जिस तरीके से कांग्रेस बदली हैं। नेहरु से लेकर राहुल गाँधी तक के दौर को अगर परखना शुरू कीजियेगा कांग्रेस में ये बदलाव ठीक वैसा ही हैं जैसे पिरामिड को उलट दें। आर.एस.एस. के भीतर ये बदलाव ऐसा ही हैं जैसा 1940 में जब उस पर प्रतिबन्ध लगा था। उस प्रतिबन्ध का गुस्सा, उसका आक्रोश और उन तमाम परिस्थितियों को सहते हुए अब वो इस बात को महसूस कर रही हैं कि वह भी उन परिस्थितियों को अपने अनुकूल कर सकती हैं और जीत सकती हैं। अपने जहन में फिर एक सवाल आएगा कि आर.एस.एस. भी चाहती हैं कि इस देश के भीतर इस तरह के प्रतिबन्ध की स्थिति अल्पसंख्यकों पर लग जाये या फिर समाज के इस तरह के तबकों पर लग जाये जिसके साथ उसके सरोकार नहीं हैं या नहीं चाहती हैं कि राजनीतिक तौर पर सरोकार हो।

तीसरी स्थिति यह हैं कि बीजेपी की जनसंघ से लेकर बीजेपी की यात्रा के दौर में बीजेपी और जनसंघ के मैनिफेस्टो को लेकर उनके कार्यप्रणाली को लेकर उनके राजनीतिक कार्यों को लेकर अगर आप परखना शुरू कीजियेगा तो ये पहला अंतर आपको 2019 में ही नजर आएगा। जरा इसे सिलसिलेवार तरीके से तीनों परिस्थितियों को समझे। कांग्रेस का मैनिफेस्टो 2019 चुनाव के लिए जारी किया गया मैनिफेस्टो के भीतर जिन बातों का जिक्र हैं वो साफ तौर पर निम्न बातों को अंकित करता हैं जैसे महात्मा गाँधी कहते थे कि भारत गांवों में बसा हैं। राहुल गाँधी उस दिशा में देखने के लिए मजबूर हुए हैं जिस समाजवाद, गांधीवाद का जिक्र नेहरु ने अपने तौर पर किया हैं उसको अपनाने की दिशा में दोबारा राहुल गाँधी को बढ़ना पड़ रहा हैं। और

तीसरी सबसे महत्वपूर्ण स्थिति ये हैं कि जो कांग्रेस नेहरु की दौर में बड़े बांध, उधोग, व्यावसायिक औधोगीकरण की दिशा में आगे बढ़ी थी वह दुबारा लौटकर उस ग्रामीण भारत की दिशा में आगे बढ़ना पड़ रहा हैं क्योंकि अगर वो नही आयेगी तो फिर उस व्यावसायिक औधोगीकरण या उस बाजार अर्थव्यवस्था का अंत हो चला हैं तो उसे लौटना होगा दोबारा ग्रामीण भारत की तरफ जो वो लौटी है अपनी घोषणापत्र की तरफ। ध्यान दीजिए रोटी, कपड़ा, मकान से भारत की पहचान शुरू होती है, चाहिए तो यही चाहिए। लेकिन आज की स्थिति में आइएगा तो आपको क्या नज़र आएगा, शिक्षा, स्वास्थ्य, और नौकरी। रोटी, कपड़ा, मकान को इन तीन चीजों ने परिवर्तित किया है। इन तीनों चीजों का जिक्र कही न कहीं संविधान में भी हैं। संवैधानिक तौर पर बीते हुए 70 वर्षों में हम इन चीजों को पूरा नहीं कर पाए, ये सच हैं। और अब अगर उस दिशा में लौटना चाहते हैं। तो अब इसका मतलब भी साफ है, इतने दिनों की पूरी प्रक्रिया में भारत ने क्या क्या पाया, क्या खोया वो आपके सामने हैं। खासतौर से राजनीति सत्ता को लेकर कांग्रेस के भीतर बहुत बड़ा बदलाव आया हैं, लेकिन कांग्रेस के भीतर के बदलाव में उसके अपने अंतर्द्वंद भी हैं। हाल ही में कांग्रेस का घोषणापत्र जारी हुआ था, तो पोस्टरबॉय के तौर पर कौन खड़ा हुआ था? और इस घोषणापत्र को बनाने वाले अध्यक्ष के तौर पर कौन थे? मनमोहन सिंह ने भूमिका निभाई मनमोहन सिंह के आर्थिक व्यवस्था की और चिदंबरम जिन्होनें घोषणापत्र तैयार किया है उनके वितीय मंत्री, या उनकी समक्ष जब वो सत्ता में थे तो वे क्या कहते थे। उस दौरान वह कॉर्पोरेट के खोर प्रवर्तक थे।उस दौरान नरसिंहा राव के वितीय मंत्री मनमोहन सिंह थे। मनमोहन सिंह की तब से लेकर 2014 तक की स्थिति का अगर आंकलन करें तथा हाल ही में जब मनमोहन सिंह द्वारा घोषणापत्र पढ़ रहे थे, बतौर प्रधानमंत्री रहते हुए उन्होने इसे कभी चाहा नहीं था। चाहे मनरेगा का सवाल हो लेकी मनरेगा में अब 100

दिन नही 150 दिन काम दिए जाएँगे। 100 दिन कार्य दिए जाने पर उन्होंने इसका विरोध किया था लेकिन आज 150 दिन का दिए जाने वाले कार्य घोषणापत्र में जिक्र हुआ तो वह इस निर्णय के साथ खड़े है। घोषणापत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य व किसानों का जिक्र हो रहा है तथा ग्रामीण भारत की तरफ रुख़ के द्वारा यह मत क्या दर्शाते है, यह संदेश भारत के भीतर होने वाली उथल-पुतल को रोकने के लिए कांग्रेस द्वारा इसे किसी न किसी तरीके से एक समाहित कराने का कार्य करना पड़ेगा। कांग्रेस द्वारा युवाओ की तरफ ध्यानाकर्षित किया जा रहा है। इन्होनें अपने घोषणापत्र में मार्च 2020 तक बीस लाख सरकारी नौकरी पर पदों को भरने की घोषणा की हैं। साथ ही किसानों के लिए बडी राहत दी हैं, व उन गरीबों के लिए बड़ी राहत है जिनकी न्यूनतम आय का जिक्र किया गया है उन्हें साल में 72000 रूपये देने का जिक्र किया गया हैं।

हरीश खरे (2004: 31-33) ने भारतीय राज्य के अलग-अलग चरणों की चर्चा की है और इन चरणों में कांग्रेस द्वारा निभाई गई भूमिका का भी अध्ययन किया हैं। पहला चरण, 1947-71 को राज्य गठन की अवधि के रूप मे वर्णित करते हैं, जिसमें कांग्रेस, की विशेषता यह थी कि वह राज्य के लिए एक 'पार्टी' के रूप में कार्य करती थी। इसे शासन की प्राकृतिक पार्टी माना जाता था, कांग्रेस न केवल केंद्र में बल्कि देश भर में लगभग हर राज्य में सरकार बनाने मे सफल थी। दूसरा चरण, 1971–91, राज्य की अवधि के रूप में वर्णित करते है समेकन, जिसके दौरान कांग्रेस ने 'राज्य की पार्टी' के रूप में कार्य किया। तीसरे चरण को राज्य वापसी की अवधि कहा जाता है, जिसके दौरान कांग्रेस एक राज्य के बिना एक पार्टी के रूप में कार्य किया। खरे (2004) का तर्क है कि 'उच्च कमान' की अवधारणा अनिवार्य रूप से स्वतंत्रता के दिनों से ही कांग्रेस का संगठनात्मक सिद्धांत रहा है श्रीमति इंदिरा गांधी के अवधि में जब उनके द्वारा पार्टी अध्यक्ष और प्रधान मंत्री दोनों की स्थिति के रूप में जब संस्थागत रूप से

कब्जा कर लिया गया तो यह संघर्ष और व्यापकता को हासिल किया।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता हैं कि कांग्रेस अपने शुरूआती दौर में समाजवाद, गरीबी तथा किसान से संबंधित मुद्दों को अपने विचारधारा के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया। वहीं 1989 तथा 1991 के चुनाव में कांग्रेस ने अपने घोषणा पत्रों में खुलकर उदारवादी-व्यक्तिवादी आर्थिक कार्यक्रमों पर बल दिया। गरीबी हटाओ, समाजवाद, भूमि सुधार इत्यादि अवधारणाओं के स्थान पर इन दिनों कर व्यवस्था को सुधारना, अर्थव्यवस्था में उदारीकरण, उत्पादन मे कार्यकुशलता, निजी क्षेत्र का सहयोग, विश्व अर्थव्यवस्था के साथ संबंध स्थापित करना, विदेशी पूँजी की आवश्यकता इत्यादि अवधारणाएं जोड़ी गई। इसी संदर्भ में 1989 के चुनाव मे कांग्रेस ने अपनी हार को सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में विफलता के कारण न मानते हुए केवल सांप्रदायिक तथा जातीय शक्ति के बढ़ने को माना। अतः 1991 में पुनः सत्ता मे आने के पश्चात कांग्रेस ने आर्थिक क्षेत्र मे उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के आधार पर तथाकथित नई आर्थिक नीति को आरम्भ किया जुलाई 1991 में पारित औधोगिक नीति घोषणा पत्र, अप्रैल 1992 के त्रिपूति अधिवेशन तथा 1992 और 1993 के बजट भाषणों में इस नई आर्थिक नीति को स्पष्ट किया गया। यह इस बात को साफ़ करते हैं कि असमानताओं को कम करना, जनसाधारण की सभी आवश्यकताओं की शासन द्वारा पूर्ती, जन कल्याण के कार्य जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं आदि के लिए सरकारी उत्तरदायित्व को कम करना इत्यादि इस नीति मे शामिल थे। इस प्रकार 1980 के दशक में श्रीमती गाँधी के समय में उदारीकरण तथा निजीकरण आरम्भ हुआ, राजीव गाँधी के काल में इसे गति मिली तथा नरसिम्हा राव की सरकार के समय इसे पूरी तरह से स्थापित किया गया। लेकिन 2019 में एक बार पुनः कांग्रेस जन कल्याण के मुद्दे जैसे कि गरीबी, रोजगार, किसान से संबंधित मुद्दे आदि को अपने

विचारधारा मे महत्त्व देना शुरू कर दिया हैं लेकिन यह देखना सबसे अधिक दिलचस्प होगा कि वर्तमान समय में मतदाताओं को कौन सी विचारधारा अधिक प्रभावित करती हैं।

संदर्भ

1. Chakrabarty, Bidyut and Sugato Hazra. 2016. *Winning the Mandate: The Indian Experience.* New Delhi: Sage.
2. Chandra, K. 2000. 'The Transformation of Ethnic Politics in India: The Decline of Congress and the Rise of the Bahujan Samaj Party in Hoshiarpur'. *Journal of Asian Studies* 59 (1): 26–61.
3. Chhibber, P. K. 2005. 'Party Decline in a Mature System: The Congress Party of India'. *Taiwan Journal of Democracy* 1 (1): 49–76.
4. Chhibber, P. K., and J. Petrocik. 1990. 'Social Cleavages, Elections and the Indian Party System'. In *Diversity and Dominance in Indian Politics*, Vol. 1, eds R. Sisson and R. Roy, 105–22. New Delhi: Sage.
5. Chhibber, P. K., F. R. Jensenius and P. Suryanayaran. 2012. 'Party Organization and Party Proliferation in India'. *Party Politics* 18 (1): 1–17.
6. Douglas, V. 2003. 'From Quasi-federation to Quasi-confederacy? The Transformation of India's Party System'. *Publius: The Journal of Federalism* 33 (4), 1 January: 153–72.
7. Farooqui, Adnan and E. Sridharan. 2016. 'Can Umbrella Parties Survive? The Decline of the Indian National Congress'. *Commonwealth and Comparative Politics* 54 (3): 331–61.
8. Hasan, Zoya. 2012. *Congress after Indira: Policy, Power, Political Change (1984–2009).* New Delhi: Oxford University Press.
9. Heath, A. and Y. Yadav. 1999. 'The United Colours of Congress: Social Profile of Congress Voters, 1996 and 1998'. *Economic and Political Weekly* 34 (34–35): 2518–28.
10. Khare, Harish. 2004. The Indian National Congress: Problems of Survival and Reinvention'. In *Political Parties in South Asia*, eds Subrata K. Mitra, Mike Enskat and Clemens Spieb, 31–54. London: Praeger.
11. Kochanek, Stanley A. 2002. 'Mrs. Gandhi's Pyramid: The New Congress'. In *Parties and Party Politics in India*, ed. Zoya Hasan, 76–106. New Delhi: Oxford University Press.
12. Kothari, Rajni. 1964. 'The Congress System in India'. *Asian Survey* 12 (4): 1161–73. 1974. 'The Congress System Revisited: A Decennial Review'. *Asian Survey* 14 (12), December: 1035–54.
13. Lijphart, A. 1996. 'The Puzzle of Indian Democracy: A Consociational

Interpretation'.*American Political Science Review* 90 (2): 258–68.

14. Palshikar, Suhas, K. C. Suri and Yogendra Yadav. 2014. *Party Competition in Indian States: Electoral Politics in Post-Congress Polity*. New Delhi: Oxford University Press.

15. Singh, M. P. and Rekha Saxena. 2003. *India at the Polls: Parliamentary Elections in the Federal Phase*. New Delhi: Orient Longman.

16. Sridharan, E. 2004. 'Electoral Coalitions in the 2004 General Elections: Theory and evidence'. *Economic and Political Weekly* 39 (51): 5418–25. 2012. 'Coalitions and Democratic Deepening in India'. In *Coalition Politicsand Democratic Consolidation in Asia*, ed. E. Sridharan, 20–73. New Delhi:Oxford University Press.

17. Wallace, Paul. 2015. 'Introduction: Single Party and Strong Leadership'. In *India's 2014 Elections: A Modi-led BJP Sweep*, ed. Paul Wallace, 3–27. New Delhi: Sage.

18. *क्रान्त, मदनलाल वर्मा (2006). स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास. **1** (1 संस्करण). नई दिल्ली: प्रवीण प्रकाशन. पृ॰ 13. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 81-7783-119-4. अभिगमन तिथि 11 जनवरी 2014. काँग्रेस की स्थापना से पूर्व देश में कुछ ऐसे तत्व विद्यमान थे जो यह सोचते थे कि जब अंग्रेजों को ही यहाँ शासन करना है तो फिर क्यों न उनसे मित्रता बनाकर और उनकी 'प्रशस्ति-स्तुति' या 'जी हुजूरी' करके अपने लिये कुछ विशेष अधिकार प्राप्त किये जायें। इन्हीं तत्वों ने मिलकर राजनीतिक पृष्ठभूमि को इस योग्य बनाया जिस पर विदेशी भावभूमि से आयातित काँग्रेस का संकर बीज बोया जा सका।*